गर दिलचस्पी बरकरार रहे

❑ मंजु शर्मा

मेरे दो बच्चे हैं। नवीं और तीसरी कक्षा में पढ़ने वाले। मैं एक सामाजिक कार्यकर्ता हूं जिसकी अभिरुचि साहित्य और लेखन में हे। घर में इस अभिरूचि के पर्याप्त चिह्न नजर आते हैं किताबें, पत्रिकाएं घर की बैठक से लेकर बरामदे तक हर जगह दिखाई दे सकती हैं।

बच्चों में स्वत: पढ़ने की इच्छा पैदा हो पाए इसके भरपूर प्रयास किए हैं मैंने। बच्चों के लिए लिखी गई कहानियों कीकिताबें, बाल पत्रिकाएं, अच्छी तादाद में जुटाई हैं। रंग-बिरंगे चित्रों वाली किताबों और पत्रिकाओं ने उन्हें आकृष्ट तो किया मगर पढ़ने की रुचि उनमें तब ही जाग पाई जब मैंने उन्हें वे कहानियां मौखिक रूप में सुनाई हैं। अखबारों में बच्चों के लिए आने वाले पन्ने जिनमें चुटकुले, कविताएं और कहानियां आती हैं। मैंने उन्हें विरले ही पढ़ते देखा हो।

पढ़ने की आदत में थोड़ा इजाफा पुस्तक मेलों ने जरूर किया है। पुस्तक मेलों में दोनों बच्चे जाते तो मस्ती के लिए हैं क्योंकि वहां किताबों के अलावा खाने-पीने का भी भरपूर सामान होता है। मगर स्टाल दर स्टाल हमारे साथ घूमते हुए, रुक-रुक कर किताबों को पलटते हुए दो-चार किताबों उन्हें अपने मन माफिक मिल ही जाती हैं, जिन्हें वे घर आकर शौक से पढ़ते हैं। कभी कोई किताब ऐसी भी आ जाती है जिसे वे एक बार देखकर रख देते हैं।

बच्चों में पढ़ने का यह रुझान कई बार ऐसी पत्रिकाओं से बाधित भी हुआ है जो कहलाती तो बाल पत्रिकाएं हैं मगर शुरू से लेकर आखिरी पन्ने तक ऐसी सामग्री होती है जिससे बच्चों का सामान्य ज्ञान भले ही बढ़ जाए उन्हें मजेदार नहीं लग सकतीं।

पराग, चंदा मामा, नंदन, चंपक, हिन्दी की बाल पत्रिकाओं के जाने-पहचाने नाम हैं। चंपक को छोड़कर (जो अब अंग्रेजी भाषा में भी छपती है।) ज्यादातर बच्चे अब किसी और नाम से परिचित नहीं) हां कॉमिक्स पढ़ने का चलन जरूर बना हुआ है। चाचा चौधरी, छोटू-मोटू, पिंकी, फेंटम के कॉमिक्स पढ़ते बच्चे अभी भी नजर आते हैं।

कुछ साल पहले शुरू हुआ वीडियोगेम और केबल टी.वी. के जरिए आने वाले कार्टून नेटवर्क चैनल ने बच्चों का रुख अपनी तरफ कर लिया हे। रोजमर्रा का सामान बेचने वाली छोटी-छोटी दुकानों पर बच्चों के मनोरंजन के लिए वीडियोगेम उपलब्ध हैं। बाजार में अनगिनत खेलों वाली वीडियोगेम की सीडी मौजूद हैं। हमारी कॉलोनी में कई जगह थड़ी नुमा दुकानों में पीछे टी.वी.रखा हुआ होता है, जहां बच्चे पैसे देकर वीडियोगेम खेलते रहते हैं। अक्सर शाम के समय यह भीड़ कुछ अधिक होती है। कॉलोनी में बने दोनों पार्कों में खेलते हुए बच्चे नहीं -बुजुर्ग स्त्री-पुरुष टहलते हुए दिखाई देते हैं। सामूहिक तौर पर बच्चों को सिर्फ मौहल्ले कि किसी गली में क्रिकेट खेलते ही देखा करती हूं।

टी.वी. पर कार्टून नेटवर्क देखना दस साल के बेटे को बहुत भाता है। बिना आंख झपकाए वह देखता रहता है। घंटों। एक दिन वह मुझसे कार्ड्स मंगवाता है, मुझे लगा वह ताश की गड्डी मांग रहा है तब दुकानदार ने समझाया - कार्टून नेटवर्क में जो 'पोकीमेन' आता है उसके कार्ड मांगते हैं बच्चे। 50-55 रुपये में मिले कार्ड्स 8-10 दिन में ही पुराने हो जाते हैं। फिर नए कार्ड्स के सेट की जिद शुरू हो जाती है।

कार्टून नेटवर्क का प्रचार तंत्र चहुं ओर फैला है। बाजार में पोकीमेन बैग, सुंदर मग, पानी की बोतल या पेंसिल बॉक्स हैं।

बच्चा फिर-फिर उनकी तरफ लौटता है एक नए आकर्षण के साथ। किताबों और पत्रिकाओं के साथ ऐसा नहीं है वे किसी स्कूल की लाइब्रेरी में या फिर चंद ऐसे परिवारों में जहां पढ़ना पढ़ाना एक स्वाभाविक गतिविधि है, नजर आएंगी। जहां तक सरकारी स्कूलों के पुस्तकालय हैं वहां किताबें बच्चों के लिए नहीं अध्यापकों के काम आती हैं। हालांकि उनमें से कितनी बच्चों के पढ़ने लायक हैं यह दूसरा प्रश्न है।

आठवीं, नवीं कक्षा तक आते-आते मध्यवर्गीय परिवारों (जिनके बच्चे अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों में नहीं पढ़ते) में बच्चों को जो छूट मिलती है उसमें अंग्रेजी सुधारने के लिए अंग्रेजी का बोझिल समाचार पत्र या जनरल नॉलेज की किताबों अथवा पत्रिकाओं को पढ़ने की ही गुंजाइश बचती है। हमारे मौहल्ले में मेरी बेटी के हम उम्र बच्चों को मैंने कभी कहानियों की किताब मांगते नहीं देखा। वे उसके पास ऐसी कोई किताब मांगने आते हैं जिससे उन्हें किसी क्विज या प्रतियोगिता की तैयारी में मदद मिल सके।

कई किताबें हैं जो मैंने एक ही बैठक में खत्म की हैं। हर घड़ी वक्त न मिलने की शिकायत करने वाली मां 5-6 घंटे तक एक किताब पढ़ती रही है यह बच्चों को खासा अचरज में डालता रहा है। खासकर बेटी जो चौदह साल की है उस किताब के बारे में जरूर जानना चाहती है। मैं अपनी तरह से उसे उस किताब की कहानी या विषय वस्तु बताती हूं। एक बार मैंने नवनीता देवसेन की 'सीता से शुरू' किताब के बारे में बताया। जाने कब उसने वह किताब पढ़ी और एक दिन उसने मुझे बताया - ''आज क्लास में हिंदी की टीचर हमें डॉ. रामकुमार वर्मा का एकांकी राजरानी सीता पढ़ा रही थीं। उन्होंने बताया - यह एकांकी आज की नारी के लिए मार्गदर्शक के रूप में है जो संस्कारों और पतिवृत्य से विहीन हैं । सीता जी के लिए रावण पर पुरुष था इसलिए पर्दे के रूप में उन्होंने तृण का सहारा लिया। ऐसी होती थी पहले की नारियां।

मुझे आज लगता है कि अपनी ही रौ में जो कुछ मैंने उसे सीता से शुरू किताब के बारे में बताया वह उसके मनमस्तिष्क पर छाया रहा और एक लंबे समय बाद भी वह मुझसे यह कह सकी कि उसे अपनी टीचर की यह व्याख्या अच्छी नहीं लगी, यह भी कि वे आज की स्त्री का आदर्श सीता को बता रही थीं। मैंने उससे नहीं कहा था कि वह इस किताब को जरूर पढ़े मगर किताब के बारे में जो मैंने उसे बताया, शायद वह उसके लिए प्रेरक बिंदु रहा।

सजह भाव से किताबों, पत्रिकाओं को उलटना,पलटना, उनके चित्र देखना, कुछ अच्छा लगे तो पढ़ना यह तब संभव है जब बच्चा भीतर से किसी तरह का दबाव न महसूस करता हो। अभिभावकीय स्वीकार्यता उसको बहुत आश्वस्त कर सकती है। जब तक कविताओं, कहानियों के जरिए शिक्षाप्रद संदेश पहुंचाने का मोह अभिभावकों, शिक्षकों या लेखकों में रहेगा तब तक हम बच्चे के मनोसंसार की नब्ज तो शायद नहीं पकड़ पाएंगे। परिवार में बच्चे की परवरिश किस तरह से हुई है, इसका प्रच्छन्न बोध बच्चे को भी होता है इसलिए घने प्यार दुलार के बावजूद वे दबाव महसूस कर सकते हैं क्योंकि अभिभावक जिन किताबों, पत्रिकाओं को बच्चों के लिए पठनीय मानते हैं वे आवश्यक रूप से बच्चों में पढ़ने की दिलचस्पी जगाए यह कतई जरूरी नहीं।

13 वर्ष की आयु में जब मैं आठवीं कक्षा की छात्रा थी, मैंने अपने स्कूल की लाइब्रेरी से लेकर बहुत से कहानी संग्रह और उपन्यास पढ़े। छुप-छुप कर पढ़ी इन किताबों को पढ़ते हुए एक अपराधबोध भी लगातार महसूस होता था कि मैं पाठ्यपुस्तकों के अलावा यह सब भी पढ़ रही हूं। यह अपराधबोध कहां से आया ? पाठ्यपुस्तकें पढ़ना एक मूल्य है और शेष समय की बर्बादी। इसका भान मेरे बालमन को जरूर कभी न कभी करवाया गया होगा यह आज समझ में आता है।

पेशे से चिकित्सक मेरे पिता अपनी अतिव्यस्तता के चलते हम बच्चों की पढ़ाई लिखाई पर उतना ध्यान नहीं दे पाते थे। घर में मां ही हमारी निगरानी करती थीं। बहुत संभव है कि खुद बहुत शिक्षित न होने पर वे कहानी उपन्यास पढ़ना अच्छा नहीं मानती हों मगर आज के माता-पिता, वे तो खासे पढ़े लिखे हैं लेकिन आज घरों से बाल साहित्य ही नहीं अन्य साहित्य भी गायब है।

एक और घटना जो इस संदर्भ को थोड़ा खोल सकती है, मुझे याद आ रही है। शायद ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ रही होऊंगी जब सबसे छोटा भाई जो तब बमुश्किल 10 साल का था, मुझसे कहानियां सुनाने की जिद किया करता था। घर में उन दिनों आने वाली धर्मयुग साप्ताहिक हिंदुस्तान, कादंबिनी जैसी पत्रिकाओं में से मैं उसे कहानियां पढ़कर सुनाया करती थी। बाद में जब वह बड़ा हुआ और पापा से उसे 10 रुपये जेबखर्च मिलने लगा तो वह सबसे पहले पत्रिकाएं खरीदकर पहले घंटे में ही अपने सारे पैसे खत्म कर देता था। यह 25-30 साल पुरानी बात है।

दीगर बात यह है कि पहले हम बच्चों की नजर से देखें तो सही। उन्हें वह जगह तो मिले जहां वे अपनी दिलचस्पियों पर हाथ रख सकें। इन दिलचस्पियों को गहरा करने में हम मददगार तभी होंगे जब हम खुद भी बच्चों को संस्कारित करने के मोह से मुक्त हों। 'हैरी पॉटर' की रिकार्ड तोड़ बिक्री तो एक बड़े प्रचार तंत्र का हिस्सा है वैसे ही जैसे किसी भी चीज का अतिशय विज्ञापन सबसे पहले बच्चों को ही खींचता है। हैरी पॉटर का जादुई तिलस्म पर्दे पर देखना बच्चों के लिए रोमांचकारी अनुभव तो है ही इससे कौन इंकार कर सकता है। ◆